

आधुनिकता के प्रभाव से सिमटती उत्तर प्रदेश की थारु जनजातीय कला

प्रो० अमृत लाल
अध्यक्ष व शोध पर्यवेक्षक
चित्रकला विभाग
मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
ईमेल: amritlal231972@gmail.com

मूल चन्द वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर
चित्रकला विभाग
एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद (उ०प्र०)
ईमेल: moolchandv565@gmail.com

Reference to this paper should
be made as follows:

Received: 13-05-26
Approved: 29-06-26

प्रो० अमृत लाल
मूल चन्द वर्मा

आधुनिकता के प्रभाव से सिमटती
उत्तर प्रदेश की थारु जनजातीय
कला

Vol. XVII, Sp. Issue July.2026
Article No.02, Pg. 004-008

Similarity Check: 09%

Online available at
<https://anubooks.com/special-issues?url=jgv-si-klsmm-mrt-july-2026>

DOI: <https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI07.002>

सारांश

भारत की जनजातीय सूची में शामिल थारु जनजाति हिमालय के तराई क्षेत्रों में निवास करती है। इनकी सबसे ज्यादा बसाहट उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र व उससे सटे उत्तराखंड और नेपाल में दिखाई देती है। मेरा विषय केवल उत्तर प्रदेश की थारु जनजातियों से संबंधित है इसलिए इस अध्ययन में हम केवल उत्तर प्रदेश से संबंधित जिलों में निवास करने वाली थारु जनजातियों की कलात्मक उपलब्धियों का ही वर्णन करेंगे। अतीत से लेकर आज तक थारु जनजातियों ने अपनी जीवंत कलात्मक संस्कृति के बदौलत अपनी एक अलग पहचान स्थापित की है। कला थारु जनजातीय जीवन का अहम हिस्सा है। इनकी संपूर्ण जीवनचर्या ही दैनिक जीवन में उपयोग होने वाली जीवंत कलाओं से परिपूर्ण है। सदैव से ही कला इनकी सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का अहम हिस्सा रही है फिर चाहे गोदना हो, गृह सज्जा हो, कुल देवी, देवता का पर्व हो या होली-दिवाली अथवा दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाली छोटी-बड़ी, आम-खास वस्तुएं ही क्यों न हो सब जगह कला का विस्तृत रूप फैला हुआ देखने को मिलता है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा भी इनके जीवन स्तर को सुधारने व उनकी कला को बढ़ावा देने के साथ-साथ कला द्वारा आय के साधन जुटा कर इन्हें इनकी ही कला के माध्यम से आत्मनिर्भर बनाने का लगातार प्रयास किया जा रहा है लेकिन इतने प्रयास काफी नहीं हैं क्योंकि आज भी इनकी आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा अपनी दैनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रहा है।

मुख्य शब्द: जनजातीय कला, संस्कृति, प्राकृतिक संसाधन, भित्ति कला, परम्परा

**This article has been peer-reviewed by the Review Committee of JGV.*

केंद्र सरकार द्वारा पहली बार अनुसूचित जनजातियों की राज्यवार सूची सन् 1950 में प्रकाशित की गई 8.6 प्रतिशत जनजातियों में थारु जनजाति का बड़ा हिस्सा भी शामिल हैं। थारु जनजाति उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से भारत, नेपाल तराई क्षेत्र में बसे जिले जैसे— लखीमपुर खीरी, बहराइच, श्रावस्ती, बलराम पुर के साथ-साथ पीलीभीत, महाराजगंज व आसपास के जिलों में भी कुछ मात्रा में निवास करती है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा थारु समाज को जनजातिय मान्यता 1967 में दी गयी। उत्तर प्रदेश में थारु जनजातियों के निवास व उनके पूर्वजों के विषय में कई तरह के मिथ उपलब्ध हैं। एक विचारधारा के अनुसार थारु लोग राजस्थान के थार मरुस्थल से आने के कारण थारु कहलाए। ऐसा माना जाता है कि मुगल आक्रमणों में सिसोदिया राजपूत राजाओं के साथ युद्ध में उनके पतियों की मृत्यु के बाद कुछ स्वाभिमानी महिलाएं स्वयं को व अपने वंश को बचाने के लिए अपने अनुचरो के साथ राजस्थान से निकलकर इन तराई क्षेत्रों के घने जंगलों में आकर छुप गयी और धीरे-धीरे अपने अनुचरो के साथ ही साथ परिवार बनाकर स्थाई रूप से रहने लगी। इसीलिए इनको राजस्थान के सिसोदिया राजवंश का वंशज भी कहा जाता है। जबकि मातृका प्रसाद कोइराला के अनुसार, थारु शब्द 'स्थविर' से लिया गया है, थारुओं में जिसका उच्चारण थोर या थारु होता है। बुद्ध जी की मृत्यु के बाद, धम्म संघ दो शाखाओं, महासंघवादी और थेरवादी में विभाजित हो गया, गौतम बुद्ध के वंशज शाक्यों ने थेरवादी शाखा को अपनाया, जो बाद में थेरवादी थारु के नाम से जाने गए। जनकलाल शर्मा और धर्मराज थापा भी इसी मान्यता का समर्थन करते हैं व थारु समुदाय को शाक्य वंश का अवशेष मानते हैं। वर्तमान समय में थारु समाज में बुद्ध जी को मानने वालों की बहु संख्यक आबादी के कारण इस मान्यता को बल मिलता है। थारु जनजातीय संस्कृति में कला जीवन का अंग है उससे अलग की वस्तु नहीं, थारु जनजातीय जीवन ही पूरा कलामय है।

भित्तिकला: उत्तर-प्रदेश में थारु जनजाति की बसावट तराई क्षेत्र के नितांत प्राकृतिक आंचल में है। उनके घर मिट्टी और घासफूस के बने होते हैं। थारु अपने घरों को अपनी मान्यता के अनुसार ही सजाते संवारते हैं। थारुओं में घर की सजावट को नक्काशी करना या स्थानीय भाषा में लिखिया करना कहा जाता है। प्रायः गोबर या चिकला मट्टी अथवा दोनों के मिश्रण से घर की दीवारों को लीप कर उस पर पहले गीली मिट्टी से अंगुलियों की सहायता से उभरे हुए रिलीफ के रूप में आकृतियां व डिजाइन बनायी जाती है। इन आकृतियों में प्रायः मोर, मछली, सांप हाथी घोड़ा व घुड़सवारों के साथ-साथ दैनिक जीवन से जुड़े प्रसंगों को दिखाया जाता है। चित्रण के बाद उन्हें आस-पास से उपलब्ध प्राकृतिक रंगों जैसे पलाश के फूलों के साथ चूने का प्रयोग, चावल के आटे के घोल का प्रयोग, हल्दी व कालिख का प्रयोग कर चित्रों को रंगीन बनाया जाता है। थारु संस्कृति में मोर शुभ और सौंदर्य का सूचक है, मछली विकास व उर्वरता का सूचक है, हाथी शक्ति, शौर्य व सामाजिक पद प्रतिष्ठा का प्रतीक है। इन चित्रों के साथ-साथ विविध मांगलिक बेलबूटों व ज्यामितीय आकृतियों से प्रवेश द्वार व अन्य स्थानों को सजाया जाता है। थारु झोपड़ियों में हाथ के पंजों के भी छाप प्रायः देखने को मिल जाते हैं जिसे घरों पर ईश्वरीय आशीर्वाद के रूप में अंकित किया जाता है।

उपयोगी कला शहरी जीवन से दूर नितांत प्राकृतिक आंचल में बसे होने के कारण थारु अपने दैनिक जीवन की सभी जरूरतें प्रकृति से ही पूरी करते हैं। अपनी व्यवस्थाओं व सुख-सुविधाओं की समस्त वस्तुएं भी प्राकृतिक चीजों से ही निर्मित करते हैं। जैसे— अनाज की देहरी, भकरी हाड़ी (पानी व अन्य सामान रखने के लिए) मटका, मेंढ़िया, भुरकी, सामान रखने के लिए डेलुई (मोनी), घेचुही डेलिया, बेवा व ढढ़िया (मछली पकड़ने का यंत्र) टोकरी बुनना , रस्सी व चटाई, दरी, कम्बल, बैग, लहंगा, ओढ़नी आदि सभी वस्तुओं की पारंपरिक बुनाई करना। थारु सब कुछ स्वयं ही हाथों से निर्मित करते हैं। अनाज रखने की डेहरी को पर्याप्त बड़ा और मोटी सतह वाला बनाया जाता है। जिससे भरने के बाद अनाज के दबाव को सह सके। बनाने के उपरांत उसे अंदर और बाहर से सफेद चिकनी मिट्टी से पोत कर साफ-सुथरा कर लिया जाता है। कृषि आधारित उत्सवों के अवसर पर इनके ऊपर धान व गेहूं की बलिया, हल, कृषि यंत्रों के चित्रों के साथ-साथ हाथ के पंजों को भी बनाने का चलन रहा है। डेहरी पर हाथ के पंजे छापने के पीछे

ऐसी मान्यता है कि ऐसा करने से देवताओं का आशीर्वाद बना रहता है और घर धन-धान्य से भरपूर रहता है। काश व मूंज की सहायता से थारु महिलाएं जीवनोपयोगी वस्तुएं निर्मित करती हैं जिसमें ढलिया, छोटी-बड़ी डेलुई (मौनी) टोकरी आदि बनाती हैं। मूंज व काश को रंग कर सुजनी की सहायता से तरह-तरह की डिजाइन निकाल इन वस्तुओं को आकर्षक बनाया जाता है कभी-कभी तो इन पर कपड़ों की कतरनों को एक साथ मिलाकर फूलों की तरह की डिजाइन भी इन पर बनायी जाती है जो देखने में बहुत ही आकर्षक लगती है।



गोदना (टीका): थारु लोक परंपराओं में गोदना कला की अपनी एक अलग महत्ता है। गोदना थारु संस्कृति का अहम हिस्सा है। गोदना श्रृंगार महिलाओं के लिए अनिवार्य रहा है यह सुहाग व देवता के प्रति आस्था का प्रतीक माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि गोदना शरीर का एक अनिवार्य स्थाई आभूषण हैं जो मृत्यु तक शरीर के साथ रहता है और मृत्यु के बाद आत्मा के साथ चला जाता है। महिलाएं अपने हाथों, पैरों व पीठ पर जटिल अलंकरण वाले गोदना बनवाती हैं। गोदना में प्राकृतिक चीजे जैसे- फल-फूल, पशु-पक्षी के साथ-साथ ज्यामितीय आकृतियों को बनाने का चलन रहा है।



वस्त्र कला: थारू जनजातियों द्वारा बनाई जाने वाली वस्त्र कला उनकी अपनी पारम्परिक पहचान के लिए जानी जाती है। थारू महिलाओं के वस्त्रों की अपनी डिजाइन व पहनावा उनकी अपनी पहचान का अभिन्न अंग है। ऐसा माना जाता है कि इस तरह के कलात्मक वस्त्रों की उत्पत्ति उनके अपने विशेष अवसरों पर उपयोगी एवं सजावटी वस्त्रों की आवश्यकता के कारण हुई होगी। इस कला में सामान्य तौर पर सूती व रेशमी कपड़ों का चयन किया जाता है जो उनके आधार यानी धरातल के काम आता है। फिर इसी कपड़े के ऊपर अलग से विभिन्न ज्यामितीय आकारों में काटे गये कपड़े की कतरनों को जिसमें विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों की आकृतियां भी होती हैं। इन आकृतियों को कपड़े के ऊपर एक पैटर्न के रूप में सुई-धागे की सहायता से बारीकी से सिला जाता है। इनमें जरूरत पड़ने पर कहीं-कहीं सुई-धागे की सहायता से कढ़ाई का कार्य करके भी इच्छित प्रभाव वाली डिजाइन तैयार की जाती है। इस प्रकार परतदार डिजाइन तैयार होती है, जो देखने में काफी आकर्षक प्रभाव देती है। आधुनिकता के प्रभाव के कारण इस प्रकार के कपड़ों के पहनने का चलन अब विशेष अवसरों तक ही सीमित होता जा रहा है किन्तु वर्तमान समय में इस प्रकार की डिजाइन का चलन थारू जनजातियों के जीवन में प्रयुक्त होने वाले अन्य कपड़ों की वस्तुएं जैसे मेजपोश, तकिये का कवर व पर्दों आदि पर भी दिखाई देता है, जो थारू की अपनी विशेष पहचान वस्त्र कला के प्रति उनके लगाव को दिखाता है। थारू जनजाति का पारंपरिक पहनावा महिलाओं के लिए घाघरा और चोली (कढ़ाई दार घाघरा व चोली) है जिसमें विशेष अवसरों अथवा नृत्य के समय महिलाएं सिर पर काश व मूंज से बना डेलिया जैसा मुकुट धारण करती है जिसे कपड़ों के साथ-साथ चांदी की लटकनों से भी सजाने की परम्परा रही है। यह मुकुट समाज में महिलाओं की श्रेष्ठ स्थिति का सूचक है। स्वनिर्मित मुकुट को धारण कर महिलाएं वन देवी के प्रति अपनी गहन आस्था को भी प्रकट करती हैं। यह उनके सौभाग्यवती होने का भी सूचक माना जाता है। गले में चांदी के हार व सिक्कों से बने आभूषण, पैरों में घुंघरू, सुताईल, बाह में बहुटा पहनने का चलन है। पुरुषों का सामान्य पहनावा धोती व कुर्ता है, लेकिन आधुनिकता के प्रभाव के कारण अब इनका महत्व भी विशेष आयोजनों तक ही सिमट गया है। सामान्य रूप में आज दैनिक जीवन में पुरुष ज्यादातर आधुनिक शर्ट पैंट, जीन्स व महिलाएं साड़ी, ब्लाउज या सलवार व कुर्ता पहनती हैं।

सरकारी प्रयास: हाल के दिनों में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा थारू कला परंपरा को बचाने व बढ़ाने के लिए कई तरह की योजनाएं लागू की हैं। तराई क्षेत्र के थारू बाहुल्य जिले बलरामपुर, बहराइच, लखीमपुर और पीलीभीत में थारू गांवों को होमस्टे योजना से जोड़ा जा रहा है जिसका उद्देश्य यहाँ आने वाले पर्यटकों को थारू संस्कृति और उनकी मिट्टी व घास से बनी पारंपरिक झोपड़ियों व कलाकृतियों का जीवंत अनुभव थारूओं के भोजन के स्वाद के साथ दिया जा सके। नेपाल से सटे बलरामपुर जिले की तुलसीपुर तहसील में पचपेड़वा ब्लॉक के इमिलिया कोडर नामक गांव में उत्तर प्रदेश का पहला थारू संस्कृति संग्रहालय 1922 में बनकर तैयार हुआ। जिसे आम जनता के लिए 1923 में खोल दिया गया। इस जनजाती संग्रहालय को थारू समुदाय की सांस्कृतिक विरासत उनका विकास, जीवन शैली धर्म, मान्यताएं, परंपराएँ, लोककला, वेशभूषा और वाद्ययंत्रों को भी संग्रहित और प्रदर्शित करने के उद्देश्य से स्थापित किया गया है।



निष्कर्ष

प्रकृति के बीच रहने वाली थारु जनजातियों की गहन आस्था सदैव प्रकृति से रही है। इन्होंने प्रकृति से ही जीवन जीने के सभी तरीके सीखे हैं। इसीलिए उनकी कला भी नितांत हस्त निर्मित प्राकृतिक है। इसमें कहीं से भी मशीनी युग की वस्तुओं का बिल्कुल भी प्रयोग नहीं रहा है। आज की आधुनिकता को इनसे सीख लेनी चाहिए कि किस प्रकार बिना प्रकृति को नुकसान पहुंचाए भी सुखी और खुशहाल जीवन जिया जा सकता है। वर्तमान समय में इस समृद्ध परम्परागत थारु संस्कृति पर आधुनिकता का काफी प्रभाव दिखाई देने लगा है फिर भी इनके मांगलिक व अनुष्ठानिक कार्यक्रमों के साथ-साथ ही दैनिक जीवन में इनकी गहन पारम्परिक कला के प्रति आस्था व विश्वास का मूल स्वरूप ज्यों का त्यों चलता चला आ रहा है। प्रकृति के बीच रहने वाली ये जनजातियां प्रकृति को प्रसन्न करने के लिए तरह-तरह से पूजा व कर्मकांड करती हैं, जसमें नाना प्रकार की कलाकृतियों के माध्यम से अपनी आस्था में प्रगाढ़ता प्रकट कर अपने आयोजन को सफल बनाने का प्रयास करते हैं। निष्कर्षता सरकार के साथ-साथ हम सबको भी ऐसी कलात्मक, प्रकृति प्रेमी जनजातियों की विरासत को सम्भालने व सजाने-संवारने का सफल प्रयास करना चाहिए।

सन्दर्भ

1. भानावत, डॉ. महेन्द्र व 'जुगनू', डॉ. श्री कृष्ण: "भारतीय लोक माध्यम" राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी जयपुर।
2. सिंह, डॉ० राम शब्द, "लोक रीति रिवाज" राज्य ललित कला अकादमी उत्तर प्रदेश।
3. रघुवंशी, दीपा "अवध की थारु जनजाति: संस्कार एवं कला" साक्षी अंक 49, अयोध्या शोध संस्थान।
4. Maiti, Sameera "The Tharu their Arts and Crafts" Nothern book centre New Delhi.
5. लहरी, डॉ. विमल कुमार "समकालीन भारत में थारु जनजाति की समस्याएं: उत्तर प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में एक सामाजिक-वैज्ञानिक अध्ययन" 2025.
6. वर्मा, ए. "जनजातिय समुदायो पर शहरीकरण का न प्रभाव:" दिल्ली सेज पब्लिकेशन, 2019.
7. विद्यार्थी, एल. पी. व विनय कुमार "द ट्राइबल कल्चर ऑफ इंडिया" कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।
8. उपाध्याय, विजय शंकर व विजय शर्मा "भारत की जनजातीय संस्कृति" मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।